RNI No.: RAJBIL/2013/54153

ISSN : 2322-0074

अलख दृष्टि

ALAKH DRISHTI

(भाषा, दर्शन, साहित्य, संस्कृति एवं मानविकी की संवाहिका त्रैमासिक शोध पत्रिका)

वर्ष-5 • अंक-03 • त्रैमासिक • जुलाई-सितम्बर, 2017

A Peer Reviewed Research Quarterly

अनुक्रमणिका

क्र.सं.	विषय	लेखक	पृष्ठ सं.
01.	मागधी प्राकृत की विभाषाएँ	डॉ. सुदर्शन मिश्र	06-11
02.	दर्शन और शिक्षा	प्रो. आनन्द प्रकाश त्रिपाठी	12-16
03.	जैनदर्शन में लोक व्यवस्था	डॉ. श्वेता जैन	17-20
04.	तीर्थंकर नेमिनाथ का नायकत्व : जैनमेघदूत के सन्दर्भ में	शोभा नाई	21-26
05.	जैन कवियों का राजस्थानी एवं हिन्दी साहित्य को अवदान	डॉ. रणजीतसिंह चौहान	27-32
06.	नैषधीय-चरितम् में प्राप्त ललित कलाओं का विमर्श	डिम्पल चुघ	33-38
07.	"माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों में रासायनिक सूत्रों के निदानात्मक परीक्षण व उपचारात्मक शिक्षण की प्रभावशीलता का अध्ययन"	लीना शर्मा	39-42
08.	प्राकृत एवं संस्कृत वाङ्मय में हनुमान चरित	डॉ. विकास चौधरी	43-47
09.	नियमसार में अजीव द्रव्य	नीतू जैन	48-51
10.	An Effective Tool for Education: WhatsApp	Dr .P.K.Pandia	52-57
	पुस्तक समीक्षा	श्रीमती तृप्ति दूबे	58

दर्शन और शिक्षा

प्रो. आनन्द प्रकाश त्रिपाठी

दर्शन और शिक्षा का अंतरंग सम्बन्ध है। दर्शन सत्य को उद्घाटित करता है और ज्ञान से वह प्रकट किया जाता है। इसीलिए वेदों में ज्ञान से पवित्र सृष्टि में दूसरा कुछ नहीं है। कहा भी गया है **'न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते'**। ज्ञान की महत्ता को बतलाते हुए वेद में ज्ञान को ब्रह्म कहा गया है। शंकराचार्य भी यही कहते हैं कि ब्रह्म ज्ञान मात्र है। ज्ञान का आधार विद्या है। **'सा विद्या या विमुक्तये'** भारतीय संस्कृति का यह आर्षवाक्य ज्ञान को मोक्ष का कारण मानता है। **'ज्ञानादेव मुक्तिः तद्विपरिष्यते बन्धः।'** अर्थात् ज्ञान से मोक्ष होता है और उसके विपरीत अज्ञान से बन्धन होता है। **'ऋते ज्ञानात् न मुक्तिः'** ज्ञान के बिना मोक्ष संभव नहीं है। सभी भारतीय दार्शनिक चार्वाक को छोड़कर दर्शन का लक्ष्य मोक्ष मानते हैं और मोक्ष ज्ञान अर्थात् विद्या या शिक्षा से संभव है। अतः दर्शन और शिक्षा का आंतरिक सम्बन्ध कहने में कोई असंगति नहीं है। ज्ञानी व्यक्ति ही किसी देश की संस्कृति एवं सभ्यता है। ऐसे व्यक्तित्व ही संस्कृति के प्रतीक पुरुष के रूप में सामने आते हैं। भारतभूमि तो अनादिकाल से ज्ञानियों के लिए पूज्य भूमि रही है। इस देश में ज्ञान का सम्मान इतना रहा कि यहां के ज्ञानी मनीषी वाल्मीकि, वेदव्यास, पाणिनी, पतंजलि, कपिल, गौतमादि को भगवान मान लिया गया। तात्पर्य यह है कि ज्ञान व्यक्ति को मिथ्यादृष्टि से मुक्त कराता है अतः दर्शन और शिक्षा में अटूट सम्बन्ध है।

दर्शन का अर्थ एवं स्वरूप

दर्शन को परिभाषित करते हुए कहा गया है कि **'दृश्यते अनेन इति दर्शनम्'** अर्थात् जिसके द्वारा देखा जाय वह दर्शन है अर्थात् दर्शन वह अन्तर्चक्षु है जिसके माध्यम से तत्त्व के वास्तविक स्वरूप का ज्ञान होता है। **'दृष्टं इति दर्शनम्'** अर्थात् जिसे देखते हैं वह दर्शन है, से तात्पर्य तत्त्वदर्शन से है। तत्त्व ब्रह्म रूप है अतः दर्शन का लक्ष्य ब्रह्मज्ञान अर्थात् मोक्ष है। दर्शन को परिभाषित करते हुए ईशावास्योपनिषद् में कहा गया है-

''हिरण्यमयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्।
तत्त्वं पूषन्नपावृणु सत्य धर्माय दृष्टये।।'' (मंत्र 15)

तात्पर्य है कि सत्य का मुख स्वर्णमय पात्र से ढका हुआ है। इसलिए हे पूषण! देवता इसे अनावृत्तकर सत्य को प्रकाशित करें। अतः दर्शन सत्य को प्रकाशित करने का माध्यम है।

महर्षि गौतम के अनुसार युक्तिपूर्वक तत्त्वज्ञान प्राप्त करने का माध्यम दर्शन है। इसके द्वारा यथार्थ तत्त्व का ज्ञान होता है। यथार्थ तत्त्व, परमतत्त्व भारतीय दर्शन में एकमात्र ब्रह्म या आत्मा ही हैं। अतः आत्मा या ब्रह्म की उपलब्धि ही दर्शन है। आत्मदर्शन या ब्रह्मदर्शन का एकमात्र फल है अमृतत्त्व की प्राप्ति। कहा भी गया है-**विद्ययामृतमश्नुते** (ईशावास्योपनिषद् मंत्र) प्रायः सभी श्रुतियों में इसी सत्य की आवृत्ति की गयी है। श्वेताश्वतर उपनिषद में कहा गया है-जिस समय योगी दीपक के समान प्रकाश स्वरूप आत्मभाव से ब्रह्मतत्त्व का साक्षात्कार करता है, उस समय उस अजन्मा और समस्त तत्त्वों से विशुद्ध देव को जानकर वह सम्पूर्ण बन्धनों से मुक्त हो जाता है। कहा गया है-

"ययात्मतत्त्वेन तु ब्रह्मतत्त्वं
दीपोपमेनेह युक्त प्रपश्येत।
अजंध्रुवं सर्वतत्त्वै विशुद्ध
ज्ञात्वादेवं मुच्यते सर्वपाशः।।"

मनुस्मृति में भी कहा गया है-

"सम्यक् दर्शन सम्पनः कर्मभिर्ननिवध्यते।
दर्शनेन् विहीनस्तु संसारं प्रतिपाद्यते।।" (6/74)

अर्थात् सम्यक् दर्शन प्राप्त हो जाने पर मनुष्य कर्म के बन्धन में नहीं पड़ता है जिसको समयक् दृष्टि नहीं है वे ही संसार के जाल में फंस जाते हैं।

दर्शन का पर्याय फिलासफी

पाश्चात्य जगत में दर्शनशास्त्र के लिए फिलासफी (Philosophy) शब्द का प्रयोग होता है। दोनों को प्रायः एक समझा जाता है, परन्तु वस्तुतः दोनों में भेद है। फिलासाफी शब्द दो ग्रीक शब्दों के योग से बना है-फिलास और सोफिया। फिलास का अर्थ है प्रेम या अनुराग और सोफिया का अर्थ है ज्ञान। अतः फिलासफी का अर्थ है ज्ञान के प्रति प्रेम या अनुराग। इस व्युत्पत्ति से यह स्पष्ट हो जाता है कि पाश्चात्य जगत में फिलासफी शुद्ध बौद्धिक है। दूसरे शब्दों में विद्या का सम्बन्ध मनुष्य की बुद्धि से है जीवन से नहीं। भारतीय दर्शन में विद्या को अमृत कहा गया है-**'अमृतं तु विद्या'** तात्पर्य यह है कि विद्या मोक्षदायिनी है। विद्या का सम्बन्ध केवल बुद्धि से नहीं, जीवन से है। दर्शन के सम्बन्ध में कुछ पाश्चात्य चिन्तकों के दृष्टिकोण को अच्छी तरह समझा जा सकता है-

- दर्शन अपने आपको जानने का माध्यम है। (Know thy self) (सुकरात)
- दर्शन से तत्त्व के मूल स्वरूप का अन्वेषण होता है। (प्लेटो)
- दर्शन से परमतत्त्व के यथार्थ स्वरूप की खोज होती है। (अरस्तू)
- दर्शन वास्तविकता का तत्त्वज्ञान है। (हीगेल)
- दर्शन का सम्बन्ध प्रत्येक वस्तु से है। (हर्बर्टर स्पेन्सर)
- दर्शन विज्ञानों के आधारों का तार्किक अध्ययन है। (वर्टण्ड रसेल)
- दर्शन आलोचनात्मक परीक्षण है। (काण्ट)

दर्शन के सम्बन्ध में पाश्चात्य विद्वानों के इन विचारों से यह स्पष्ट होता है कि दर्शन एक बौद्धिक व्यायाम के रूप में है। प्लेटो तो दर्शन का उद्गम आश्चर्य में मानता है (Philosophy begins in wonder) अर्थात् मानव बुद्धि जब चकाचौंध हो जाती है तब दर्शन का अभ्युदय होता है। अतः दर्शन बौद्धिक ज्ञान है। जबकि भारतीय दर्शन में दर्शन ब्रह्मज्ञान, आत्मज्ञान रूप है।

शिक्षा का अर्थ एवं स्वरूप

शिक्षा का साधारण अर्थ सीखना या सिखाना होता है। परन्तु अपने लक्ष्यों सीखने-सिखाने की प्रक्रियाओं, कार्यों, अपेक्षाओं, प्रभावों और वास्तविकताओं के परिप्रेक्ष्यों में यह एक बहुत ही व्यापक है। साथ ही, जटिल प्रक्रिया है। इसे एक उद्देश्यपूर्ण प्रक्रिया माना जाता है। इसके उद्देश्यों में जहां एक तरफ इतिहास को जानने की है वहीं दूसरी ओर यह भी माना जाता है कि यह वर्तमान का पथ भी आलोकित करे। इसका स्वरूप भविष्यद्रष्टा का हो तो इसका कार्य भविष्यवक्ता का हो। इसे ही व्यक्ति विकास एवं सामाजिक विकास का भी साधन माना जाता है। वस्तुतः शिक्षा के क्षेत्र की दिशाएं व धाराएं इतनी व्यापक एवं बहुआयामी हैं कि इन्हें किसी एक 'दिशा' व 'धारा' में बांधना एवं परिभाषित करना कठिन है। फिर भी इसे परिभाषित करते हुए आर्षवाक्य है-

'असतो मा सदगमय
तमसो मा ज्योतिर्गमय
मृत्योर्माऽमृतम गमय।'

अर्थात् शिक्षा का उद्देश्य असत्य से सत्य की ओर, अंधकार से प्रकाश की ओर, मृत्यु से अमरत्व की ओर जाना है। शिक्षा की इस आध्यात्मिक परिभाषा में व्यक्तित्व की कसौटी को परखा गया है। शिक्षा को परिभाषित करती हुई कुछ अन्य परिभाषाएं शिक्षा के स्वरूप एवं महत्त्व को उजागर करती है-

- शिक्षा देशप्रेमी, चरित्रवान और विद्वान नवयुवक बनाने की प्रक्रिया है। (स्वामी श्रद्धानन्द)
- शिक्षा मानव की सुषुप्त चेतना को जागृत करती है। (विवेकानन्द)
- जीवन का सम्पूर्ण विकास शिक्षा है। (मदन मोहन मालवीय)
- शिक्षा से व्यक्ति सत्य को समझने और खोजने लायक बनता है। (रविन्द्रनाथ टैगोर)
- शिक्षा से शरीर, मन एवं आत्मा का विकास होता है। (संत विनोबा भावे)
- शिक्षा मनुष्य के मस्तिष्क के सम्पूर्ण विकास का नाम है। (डॉ. जाकिन हुसैन)
- शिक्षा मनुष्य के नैतिक विकास का साधन है। (डॉ. राधाकृष्णन)
- शिक्षा सत्य को खोजने का मार्ग है। (सुकरात)
- शिक्षा पूर्ण एवं स्वस्थ जीवन जीने की तैयारी है। (हर्बर्ट स्पेन्सर)

उपर्युक्त परिभाषाओं से यह स्पष्ट होता है कि शिक्षा एक प्रक्रिया है। यह प्रक्रिया उद्देश्यपूर्ण है। उद्देश्य कुछ नया करने एवं विकास से है। विकास वैयक्तिक एवं समाज सम्बन्धी भी है। किन्तु दुर्भाग्य से विद्या मंदिरों में राष्ट्रद्रोह के कार्य सामने आने लगे हैं। आधुनिक चिंतक राजस्थान पत्रिका के प्रधान संपादक गुलाब कोठारी कहते हैं कि वर्तमान शिक्षा शरीर और बुद्धि के विकास तक सीमित रह गयी है। मन और आत्मविकास से उसका दूर-दूर तक सम्बन्ध नहीं रह गया। शिक्षा धर्म निरपेक्ष हो गयी है तब व्यक्ति स्वधर्म की पहचान कैसे सीखेगा? शिक्षा में आध्यात्मिकता तो खो ही गयी। व्यक्तित्व विकास पीछे छूट गया। योगक्षेम की परिभाषा ही बदल गयी। ज्ञान छूट गया, विज्ञान रह गया। ब्रह्म छूट गया, माया रह गई। 'सम्' छूट गया, कृति रह गयी। यानी संस्कृति खण्ड-खण्ड हो गयी। बीस साल तक किया गया श्रम और लगाया गया धन जीवन संघर्ष में व्यक्ति के काम नहीं आयेगा।

शिक्षा का विकास या ह्रास

प्राचीन गुरुकुल परम्परा जहां शिक्षा ही एकमात्र उद्देश्य होता था। वहां रंक और राजकुमार समान थे। जमीन पर बैठकर पढ़ते थे। मांगकर लाते थे और भोजन करते थे। त्याग का जीवन था। ज्ञान ग्रहण करना मुख्य उद्देश्य था। त्रेता युग में राम वाल्मीकि के आश्रम में और द्वापर में कृष्ण संदीपनी के आश्रम में रहकर शिक्षा ग्रहण किये। द्वापर के अंत में ही शिक्षक घर आकर पारिश्रमिक के बदले में शिक्षा देने लगे। आचार्य द्रोण इसके श्रेष्ठ उदाहरण हैं। द्रोण अब सबको शिक्षा नहीं दे सकते थे। न एकलव्य को, न कर्ण को। शिक्षा के विषय छात्रों के अनुरूप होते चले गये। कृष्ण-सुदामा का साथ छूट गया। दुर्योधन और दुःशासन भी पैदा होने लग गये। संस्कृति का क्षरण भी शुरू हो गया। दूसरों का हक छिनने लगा। 'सूच्यांग्र नैव दास्यामि बिना युद्धेन केशवः!' के स्वर उठने लगे। आश्रम में यह सब संभव नहीं था। वहाँ पात्रता के अनुसार शिक्षा दी जाती थी, यहाँ संरक्षण का आधार था। महाभारत के साथ ही द्वापर बीत गया। शिक्षा में कुछ कल तक धर्म की भूमिका भी बढ़ी। अंग्रेजों ने नई व्यवस्था बनाई। न शिष्य गुरु के घर जायेगा, न ही गुरु शिष्य के घर। स्कूल खड़े कर दिये गये। पढ़ाई का समय तय कर दिया गया। विषय तय हो गये, कालांश निश्चित कर दिये गये। वेद के गुरु और अन्तेवासी (शिष्य) शब्द भी विदा हो गये। आज तो खुले-विश्वविद्यालय उपलब्ध हैं। न गुरु को जानने की जरूरत है, न ही शिष्य के परिचय की। डिग्री घर बैठे ही आ जाती है। इसी में आगे डिग्रियां खरीदने की भी व्यवस्था हो गयी। कई बार तो फीस भेजते ही डिग्रियां आ जाती हैं। यह वर्तमान शिक्षा का वास्तविक किन्तु घिनौना स्वरूप है। प्रोफेसर को प्रापर्टी डीलर बनने से बचाना है, विद्यार्थी को राष्ट्रद्रोही होने से बचाना है। विद्या मंदिर को आतंकवाद एवं राजनीति का अड्डा होने से बचाना है। अब तो बनाने के स्थान पर बचाने की जरूरत

हो गयी है। कैसे बचा पायेंगे विद्यार्थी, शिक्षक एवं विद्या मंदिर को, यह आज की शिक्षा के समक्ष ज्वलन्त प्रश्न है।

दर्शन और शिक्षा

दर्शन और शिक्षा का निकट का सम्बन्ध है। इसीलिए एक शिक्षाशास्त्री को एक व्यावहारिक दार्शनिक माना जाता है जो जीवन अथवा विश्व की समस्याओं को समझने और सुलझाने के लिए शिक्षा का प्रयोग करता है। इसका कार्य मानव जीवन सम्बन्धी अनेक समस्याओं की पहचान करना, उसके कारणों को खोजना और फिर शिक्षा सम्बन्धी उन नीतियों का निर्माण करना जिनसे समस्याओं के समाधान तक पहुंचा जा सके। दर्शन और शिक्षा को समझने के लिए कुछ विद्वानों के मन्तव्य प्रस्तुत हैं-

- शिक्षा और दर्शन एक सिक्के के दो पहलू हैं। (जे.एस. रास)
- दर्शन के बिना शिक्षा की प्रक्रिया अधूरी है। (जे.जी. फिश्ते)
- दर्शन ही शिक्षा का मार्गदर्शन करता है। (स्पेन्सर)
- शिक्षा दर्शन का गतिशील पहलू है। (एडम स्मिथ)
- दर्शनशास्त्र का काम शिक्षा को बौद्धिक आधार देना है। (एस.आर. भट्ट)

दर्शन की शिक्षा के लिए उपयोगी विधियाँ

- शंका समाधान की प्रणाली
- आगमन प्रणाली
- निगमन प्रणाली
- विश्लेषण प्रणाली
- संश्लेषणात्मक प्रणाली
- द्वन्द्व न्याय की प्रणाली

दार्शनिक शिक्षा के फलितार्थ

विभिन्न दर्शनों के अनुसार शिक्षा के फलितार्थ निम्न हैं-

चार्वाक दर्शन

- चार्वाक दर्शन एकमात्र प्रत्यक्ष को प्रमाण मानता है।
- वर्तमान लौकिक जीवन को सुखी बनाने की बात करता है।
- अर्थ-काम को श्रेयस्कर मानता है।
- काम को ही परम पुरुषार्थ मानता है।
- स्वर्गादि को मिथ्या मानता है।
- आत्मा, ईश्वर, पुनर्जन्म का खण्डन करता है।

जैन दर्शन

- जैन दर्शन में ज्ञान, दर्शन एवं चारित्र की युति पर बल दिया गया है।
- अनेकान्तवाद की मान्यता पर बल दिया गया है।
- पंचज्ञान को महत्त्व दिया गया है।
- षड्द्रव्य एवं नवतत्त्व की महिमा का गुणगान किया गया है।
- आत्मज्ञान में आस्था एवं मोक्ष को लक्ष्य माना गया है।

बौद्ध दर्शन

- चार आर्य सत्य केन्द्र में है।
- जीवन के लिए अष्टांग मार्ग जरूरी है।
- प्रतीत्य समुत्पाद के रूप में कारणवाद में आस्था है।
- मध्यम प्रतिपदा में विश्वास है।
- अनात्मवादी है किन्तु निर्वाण में विश्वास है।

सांख्यदर्शन

- सांख्य द्वैतवादी दर्शन है।
- प्रकृति और पुरुष दो प्रधान तत्त्व हैं।
- प्रकृति सक्रिय एवं पुरुष उदासीन है।
- विकासवाद की मान्यता है।
- त्रिविध दुःख की निवृत्ति से मोक्ष संभव है।

योगदर्शन

- योग आत्म-दर्शन का साधन है।
- चित्तवृत्ति का निरोध योग है।
- आत्म नियंत्रण पर बल दिया गया है।
- अ अष्टांग योग की साधना केन्द्र में है।
- असम्प्रज्ञात समाधि लक्ष्य है।

न्याय दर्शन

- प्रमाणों के द्वारा अर्थ परीक्षण न्याय है।
- सभी प्रश्नों का समाधान तर्क में है।
- संशय, भ्रांति, कुतर्क से दूर होने पर बल।
- आत्यन्तिक दुःखों की निवृत्ति करना है।
- यथार्थ ज्ञान की प्राप्ति करना अभीष्ट है।

वैशेषिक दर्शन

- सप्त पदार्थों का ज्ञान आवश्यक है।
- ईश्वर जगत का सूत्रधार है।
- परमाणु संयोग से सृष्टि की उत्पत्ति होती है।
- ज्ञान के द्वारा मुक्ति संभव है।

मीमांसा दर्शन

- धर्म जिज्ञासा महत्त्वपूर्ण है। (अथातो धर्म जिज्ञासा)
- धर्म के स्वरूप की परीक्षा करना लक्ष्य है।
- वैदिक धर्म के प्रति सत्यनिष्ठा रखना।
- वैदिक धर्म का पुनरुत्थान करना।
- सामाजिक एवं नैतिक कार्य पर बल।

अद्वैत वेदान्त दर्शन

- ब्रह्म की एकमात्र सत्ता मानना (अथातोब्रा जिज्ञासा)
- मोक्ष प्राप्ति एवं ब्रह्मज्ञान पर बल।
- सद्जीवन का विकास।
- वसुधैव कुटुम्बकम की अनुभूति।
- त्रिविध सत्ता को स्वीकार करना।
- ज्ञाता, ज्ञेय, ज्ञान-प्रक्रिया का एकाकार होना।
- श्रवण, मनन, निदिध्यासन का अभ्यास करना।

पाश्चात्य दर्शन और शिक्षा

पाश्चात्य दर्शन के कई सिद्धान्तों से व्यवहारिक शिक्षा मिलती है जिनको जीवन में उतारने से व्यक्तित्व विकास स्वाभाविक है।

- ज्ञान ही सद्गुण है। (सुकरात)
- अधिकतम संख्या का अधिकतम सुख अपेक्षित है। (बेन्थम)
- सन्तुष्ट सूकर की अपेक्षा असन्तुष्ट सुकरात अच्छा है। (मिल)
- कुछ पाने के लिए कुछ खोना पड़ता है। (हेगल)
- अपना स्थान और उसका कर्त्तव्य। (ब्रेडले)
- सदिच्छा ही शुभ है। (काण्ट)
- कर्त्तव्य के लिए कर्त्तव्य आवश्यक है। (काण्ट)

अन्त में दर्शन और शिक्षा के एकमात्र लक्ष्य की अभिव्यक्ति स्वामी विवेकानन्द के शब्दों में-

'सुप्तशक्ति
तुम
हे मानव! उठो, जागो और
प्रयाण करो।'

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. भारतीय शिक्षा दर्शन (अनुवाद श्रीकृष्ण चन्द्र), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2000
2. वैदिक साहित्य में संवाद, किरण ऊषा, नाग पब्लिशर्स, दिल्ली, 2005
3. भारतीय शिक्षा की समस्याएं तथा प्रवृत्तियां, उदावल सुबोध, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, 1982
4. दर्शनशास्त्र के स्रोत, चट्टोपाध्याय देवी प्रसाद, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1992
5. भारतीय दर्शन का इतिहास, दासगुप्ता, एस.एन. राजस्थान ग्रंथ अकादमी, जयपुर
6. भारतीय चिन्तन परम्परा, दामोदरन के., पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, प्रा.लि., नई दिल्ली, 2001
7. शिक्षा के दार्शनिक आधार, पाण्डेय रामशकल, हिमालय पाकेट बुक्स, प्रा.लि., दिल्ली
8. भारतीय संस्कृति, मोहन नरेन्द्र, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, 1997
9. दर्शन दिग्दर्शन, सांस्कृत्यायन राहुल, किताब महल, अहमदाबाद, 2000
10. उपनिषद दर्शन, सिंह वीरेन्द्र व्यास, वापी प्रकाशन, दिल्ली, 1994
11. अणुव्रत पाक्षिक नवम्बर अंक, संपादक महेन्द्र जैन, अणुव्रत महासमिति, नई दिल्ली
12. दर्शन, देवराज एन.के, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1994
13. जैनदर्शन एवं पाश्चात्य दर्शन-त्रिपाठी आनन्द प्रकाश, के. जैन पब्लिशर्स, उदयपुर, 1999
14. नीतिशास्त्र की रूपरेखा, कपूर रजनी, लाल के.बी., एशिया बुक कम्पनी, इलाहाबाद, 1980

निदेशक, दूरस्थ शिक्षा निदेशालय
जैन विश्वभारती संस्थान (मान्य विश्वविद्यालय)
लाडनू-341306 (राजस्थान)